भारत में मध्य पूर्व की नीतियों की निरंतरता और परिवर्तन
Continuity and Change in India's Middle East Policies

निकोलस ब्लेरल
Nicolas Blarel
May 19, 2014

फ़रवरी, 2014 में भारत ने एक ही सप्ताह में सउदी अरब के युवराज अब्दुल्ला अज़ीज़ अल सउद और ईरान के विदेश मंत्री जावेद ज़रीफ़ की मेज़बानी करके एक अनूठा जबर्दस्त राजनयिक दुस्साहस किया है. इन दौरों के समय को मात्र संयोग नहीं माना जा सकता; पिछले दो दशकों से भारत इज़राइल, फिलिस्तीन, ईरान और सउदी अरब जैसे मध्य पूर्व के अलग-अलग देशों के साथ बड़ी ही कुशलता से संबंधों का निर्वाह करता रहा है. कुछ लोग इस संतुलनकारी कदम को इस क्षेत्र के लिए एक नये और व्यापक दृष्टिकोण के संकेत की तरह भारत की "मध्य पूर्व की ओर देखने" की नीति के तहत देखते हैं. इसके अर्थ में आये परिवर्तन के परे जाकर भारतीय राजनयिक ऐतिहासिक रूप से इसे "मध्य पूर्व" नाम से निर्दिष्ट करते आये हैं- साथ ही यह भी तर्क दिया जाता है कि इस नये ढाँचे में ही भारत की नीति का निर्देशन किया जाता है. इसके साथ ही भारतीय राजनीतिज्ञ और राजनयिक नियमित रूप में हमें सचेत करते रहे हैं कि मध्य पूर्व के मामले में भारत का दखल कोई नयी बात नहीं है. ये दोनों ही मूल्यांकन आंशिक रूप में सही हैं. जहाँ एक ओर इस क्षेत्र को भारत की शानदार रणनीति के एक महत्वपूर्ण उपादान के रूप में लगातार देखा जाता रहा है, वहीं भारत की नीति में स्पष्ट परिवर्तन यह भी हुआ है कि पिछले दो दशकों से वह कुछ ही चुनींदा क्षेत्रीय भागीदारों ("वैकल्पिक" नीति) के साथ ही सीमित न रहकर "अधिकाधिक भागीदारों के साथ मिलकर" अपनी रणनीति बनाता रहा है.

<u>अपने सभी अंडों को गलत टोकरी में रखना ?</u>

भारत ऐतिहासिक रूप से खाड़ी देशों के साथ अपने सदियों पुराने व्यावसायिक संबंधों और सांस्कृतिक-धार्मिक संबंधों और हाल ही के साझे साम्राज्यवादी इतिहास के माध्यम से मध्य पूर्व से जुड़ा रहा है. इसके परिणामस्वरूप जब भारत स्वतंत्र हुआ तो उसने इन्हीं पुराने संबंधों के आधार पर उन सभी क्षेत्रीय खिलाड़ियों से साथ संबंध स्थापित करना शुरू कर दिया जो साम्राज्यवादी दमन से बाहर निकले थे. परंतु अपने ही देश में आंतरिक सुरक्षा संबंधी मुद्दों और आर्थिक विकास के कारण अपने ही आसपास के पश्चिमी किनारे के देशों के साथ भारत के संबंध सीमित ही रहे. अपनी क्षमता के सीमित प्रदर्शन के कारण भारत क्षेत्रीय घटनाओं को प्रभावित करने के क्षेत्रीय विकल्पों को टालने की ही सोचता रहा. पचास और साठ के दशक में भारत यह मानकर कि काहिरा ही अरब हितों का असली प्रवक्ता है, मिस्र के गमाल अब्दल नासिर को ही मूल रूप में समर्थन देता रहा.

लेकिन भारत की काहिरा-केंद्रित नीति का साठ के दशक में उस समय विरोध होने लगा जब मिस्र की सीधे भारत के क्षेत्रीय और राष्ट्रीय हितों से टकराहट होने लगी. भारतीय नेता इस बात का विश्लेषण करने में विफल

रहे कि धर्मनिरपेक्ष राष्ट्रीय मिस्र के साथ निकट संबंध होने के कारण भारत सउदी अरब और जोर्डन जैसे कहीं अधिक कट्टरवादी सोच रखने वाले देशों से दूर होने लगा और इस बीच उनके संबंध पाकिस्तान के साथ बेहतर होने लगे. भारत का मिस्र के प्रति झुकाव होने के कारण सन् 1967 में नासिर ने जब सैनिक दुस्साहस दिखाया जिसके कारण इज़राइल के साथ उसके सैनिक टकराहट की नौबत आ गयी, तो भी दिल्ली ने बिना शर्त उसका समर्थन किया. सैनिक हार के कारण सारे अरब जगत् की राजनीति में मिस्र की हैसियत गिरने लगी, जिसके कारण सभी देशों का झुकाव परंपरागत राजतंत्र की बढ़ने लगा. पाकिस्तान के विरुद्ध कश्मीर के लिए अरब लोगों का समर्थन प्राप्त करते रहने के लिए और साथ ही ऊर्जा की बढ़ती ज़रूरतों को पूरा करने के लिए भारत ने खाड़ी के देशों के साथ (खास तौर पर ईराक और ईरान के साथ) राजनैतिक संबंधों को मज़बूत करने का निर्णय किया. इसके बाद भारतीय नेताओं ने जल्द ही क्षेत्रीय मामलों में काहिरा के निर्णय को स्थगित कर दिया और अस्सी के दशक के अंत तक दूसरे देशों पर भरोसा करता रहा.

<u>बहु- मित्रवाद की नीति</u>

नब्बे के दशक में दो घटना क्रम ऐसे हुए जिनके कारण भारत को अपनी मध्य पूर्व की नीति को फिर से स्थायी तौर पर बदलना पड़ा. सबसे पहला घटना चक्र था खाड़ी युद्ध का और दूसरा था ओस्लो शांति प्रक्रिया, जिनके कारण अरब मुस्लिम जगत् दो भागों में बँट गया, भले ही यह सद्दाम हुसैन की सत्ता के समर्थन का सवाल रहा हो या फिर इज़राइल और पीएलओ अर्थात् फिलिस्तीनी मुक्ति संगठन के बीच वार्ता का. इस घटना चक्र से उत्पन्न भ्रम की स्थिति के कारण भारत को इस क्षेत्र में नये ढंग से राजनयिक संबंध बनाने का मौका मिल गया. उदाहरण के लिए युद्ध के दौरान पीएलओ अर्थात् फिलिस्तीनी मुक्ति संगठन द्वारा ईराक के समर्थन की व्यापक अरब आलोचना और सन् 1991 में अरब-इज़राइल शांति वार्ताओं के दौर के कारण भारत के इज़राइल के साथ संबंधों की नयी शुरुआत से संबंधित नकारात्मक राजनयिक निहितार्थ सीमित हो गये हैं. इसके परिणामस्वरूप भारत को एक ऐसा अनूठा अवसर मिला जिसमें उसकी नीति अर्ध-लाभप्रद भागीदारी से हटकर कुछ स्थानीय खिलाड़ियों के साथ सभी सम्बद्ध क्षेत्रीय कारकों को साथ लेकर बहु-मित्रता की हो गयी. दूसरा घटना-चक्र यह हुआ कि भारत के आर्थिक विकास, बढ़ते अंतर्राष्ट्रीय प्रभाव और परमाणु हथियार संपन्न हैसियत के कारण मध्य पूर्व के अधिकांश देशों को भारत के साथ अपनी भागीदारी आकर्षक लगने लगी. उदाहरण के लिए, नब्बे के दशक के आरंभ में इस्लामी संगठन के सम्मेलन में कश्मीर में भारत के आतंकवाद विरोधी प्रयासों की सर्वसम्मति से की गयी भर्त्सना के बावजूद इनमें से किसी भी देश ने कश्मीर विवाद को ऐसी कोई भारी बाधा नहीं बनने दिया जिसके कारण दिल्ली के साथ संबंध बनाने में उन्हें कोई दिक्कत आयी हो. मध्य पूर्व के देशों ने लगातार ही भारत को अपने पड़ोस में एक ऐसी उभरती भूराजनैतिक शक्ति के रूप में ही देखा है जो उनके प्राथमिक निर्यातों की मंज़िल भी है और निवेश का संभावित स्थल भी.

मध्य-पूर्व के नेताओं की उभरती पहचान के कारण भारत मध्य-पूर्व के प्रत्येक देश के साथ द्वि- पक्षीय रूप में और अलग तरीके से संबंध बनाने में कामयाब हुआ है. पिछली गलत नीतियों से सीखते हुए और क्षेत्र में

राजनैतिक विभाजन के वर्तमान स्तर को देखते हुए भारत अब अरब जगत् के आंतरिक विवादों में निष्पक्ष बने रहने का प्रयास कर रहा है. नियोजित शानदार रणनीति बनाकर चलने के बजाय भारत सरकार सन् 1992 से धीरे-धीरे यह महसूस करने लगी थी कि एक ओर इस क्षेत्र में भारत के विविध प्रकार के आर्थिक और राजनैतिक हितों की अनदेखी न की जाए और दूसरी ओर सभी अग्रणी नेतृत्व के साथ कारोबार जारी रखा जाए. यह नीति भारत के लिए बहुत ही लाभप्रद रही है.

नीति संबंधी परिवर्तन का सबसे स्पष्ट उदाहरण तो यही रहा है कि सन् 1992 में भारत ने इज़राइल के साथ राजनयिक संबंध स्थापित किये. यह वह देश है, जिसके साथ अपने अरब भागीदारों के नाराज़ होने के भय से भारत सामान्य संबंध बनाने से बचता रहा है. पिछले दो दशकों में भारत ने एक साथ ही ईरान, सउदी अरब, यूएई अर्थात् संयुक्त अरब अमीरात और खाड़ी सहयोग परिषद (जीसीसी) के साथ मज़बूत रणनीतिक भागीदारी की है. भारत और इन देशों के बीच आतंकवाद का सामना करने के लिए किये गये सहयोग से एक नया रणनीतिक आयाम जुड़ गया है. अब खाड़ी के देश और अरब देश मात्र तेल के स्रोत और भारतीय मज़दूरों की मंज़िलें ही नहीं रह गये हैं; वे आर्थिक और राजनैतिक भागीदार भी हो गये हैं.

<u>भारत की संतुलनकारी भूमिका की सीमाएँ</u>

परंतु भारत के लिए अपनी संतुलनकारी भूमिका का निर्वाह करना भी अब कठिन हो गया है. हाल ही के वर्षों में इज़राइली- ईरानी और शिया-सुन्नी प्रतिद्वंद्विता के कारण भारत पर किसी एक पक्ष के साथ खड़े रहने का दबाव बढ़ता जा रहा है. अब तक भारत अमरीकी दबाव के बावजूद और सउदी और इज़राइल की परवाह किये बगैर ईरान के साथ आर्थिक और राजनैतिक भागीदारी का निर्वाह करता रहा है. ऐतिहासिक दृष्टि से भारत ईरान के कच्चे तेल का सबसे बड़ा खरीदार रहा है और ईरान के प्राकृतिक गैस भंडार पर उसकी नज़र भी रही है. लेकिन फ़रवरी, 2012 को नयी दिल्ली में इज़राइली राजनयिक पर किये गये हमले में ईरान की संभावित भूमिका के कारण और तेहरान के विरुद्ध अंतर्राष्ट्रीय प्रतिबंधों के कारण दोनों देशों के संबंधों में दरार पड़ने लगी है. अमरीका और ईरान के बीच हाल ही में हुई आर्थिक संधि के कारण अस्थिर बराबरी में फिर से सुधार हो सकता है.

इसके अलावा यह भी स्पष्ट नहीं है कि यह नयी बहुविध नीति किसी सुविचारित और दीर्घकालीन शानदार रणनीति का ही एक भाग है. जहाँ तक मध्य पूर्व का संबंध है, भारत एक साथ ही अनेक प्रयास करता रहा है, जैसे, ऊर्जा के स्रोतों और बाज़ार पर नियमित पहुँच बनाये रखना, जो देश के आर्थिक विकास के लिए आवश्यक है, भारी संख्या में प्रवासी भारतीयों (सात मिलियन प्रवासी भारतीयों) के कल्याण का ध्यान रखना, इज़राइल से उच्च तकनीक वाले सैनिक उपकरण प्राप्त करना, सामाजिक- आर्थिक तनाव को कम करने का प्रयास करना और अपना प्रभाव बनाये रखने के लिए चीन के साथ प्रतिस्पर्धा करना. इस बहुस्तरीय नीति के पीछे जो संचालक तत्व रहे हैं, वे परोक्ष और विविध प्रकार के हैं और इनकी पहल इन देशों की सरकारों द्वारा या व्यापारिक हितों के कारण की जाती रही है.

अब तक भारत किसी तरह से निष्पक्ष रहते हुए परस्पर विरोधी हितों और सभी सम्बद्ध पार्टियों को संतुष्ट करने में कामयाब रहा है. इसके पीछे उसकी यह उम्मीद रही है कि आर्थिक निवेश के लिए अपनी आकर्षक आर्थिक स्थिति के कारण यह मध्य पूर्व में बहुत ही नाज़ुक संतुलन बनाये रख सकेगा. इसके अनुरूप भारतीय राजनयिकों का भी यही उद्देश्य रहा है कि वे भारत के बहुस्तरीय संबंधों को संचालित करने के बजाय उनका प्रबंधन करते रहें. इस संदर्भ में दिसंबर से भारत के विदेश मंत्रालय की "मध्य पूर्व की ओर देखने" की नयी नीति के इस प्रयास को भारत और मध्य पूर्व के परस्पर संबंधों के विभिन्न स्तरों को बेहतर ढंग से नियंत्रित करने और उनके बीच समन्वय स्थापित करने का रहा है.

निकोलस ब्लेरल ब्लूमिंगटन के इंडियाना विश्वविद्यालय में डॉक्टरेट के प्रत्याशी हैं और अमरीकी व वैश्विक सुरक्षा केंद्र में स्नातक अनुसंधान सहायक हैं. वह भारत की इज़राइल नीति का विकासः सन् 1922 से निरंतरता, परिवर्तन और समझौता *(ऑक्सफ़ोर्ड युनिवर्सिटी प्रैस, आगामी सितंबर,* 2014*) के लेखक हैं.*

हिंदी अनुवादः विजय कुमार मल्होत्रा, पूर्व निदेशक (राजभाषा), रेल मंत्रालय, भारत सरकार
<malhotravk@hotmail.com>